ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति
सह सम्पादक : डा० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग,
प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
प्रकाशक : डा० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)

विषय-सूचि

—◆◆—

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

भाद्रपद २०३६ — वर्ष : ३४, अंक : ६
सितम्बर १९८२ — पूर्णाङ्क : ३३६

श्रुति सुधा

[1]सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ साम० ६१ ॥

अन्वय :—[वयम्] सोमं राजनं वरुणम्–आदित्यं विष्णुं सूर्यं [2]ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्–अग्निम् अनु–आ–रभामहे ।

सं० अन्वयार्थ :—शान्त, सर्वत्रप्रकाशमान्, वरणीय अखण्ड सर्वव्यापक, सर्वप्रेरक, सर्वज्ञ वा सृष्टिकर्ता और बृहति–वेदवाणी के अधिपति, ज्ञानस्वरूप प्रभु का हम सदा आश्रय लेते हैं ।

अन्वयार्थ :—(सोमं राजनं, वरुणम्, आदित्यं, विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्–अग्निम् अनु–आ–रभामहे) सोम्य गुणों से सम्पन्न शान्तस्वरूप; सर्वत्र देदीप्यमान; पापनिवारक वरणीय सर्वश्रेष्ठ, अखण्डनीय; विष्णु सर्वत्रव्यापक, सूर्य अर्थात् सर्वप्रकाशक, सर्वप्रेरक; ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता, सर्वज्ञ और बृहति–वेदवाणी के अधिपति ज्ञान-प्रकाश के अनुपम स्रोत प्रभु का हम बारम्बार स्मरण करते हैं, हम अनुकूल होकर आह्वान करते हैं वा हम आश्रय लेते हैं ।

जो शान्तस्वरूप, सारे संसार का सम्राट् सब को श्रेष्ठ बनाने वाला सर्वश्रेष्ठ, आदित्य के समान देदीप्यमान् कण-कण में बसने वाला, सूर्य–सर्वत्रगतिमान् सर्वप्रेरक, ब्रह्मा–सब से महान् सर्वज्ञ वेदज्ञान का अधिपति ज्ञान-प्रकाश का अद्भुत् स्रोत प्यारा प्रभु है उसी का ही हमें सदा अनुकूल मन से स्मरण करना चाहिये, उसी का ही हमें सदा अपनी रक्षा के लिये आह्वान करना चाहिये. उस का ही हमें अपने रक्षण–संरक्षण के लिये सदा आश्रय लेना चाहिये । क्योंकि वही सब से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ सहारा है ।

---

१ सोमं राजानमवसेऽग्नि गोभिर्हवामहे……। इति ऋक्पाठ ।

२ "ब्रह्मा सर्वविद्यः, सर्वं वेदितुमर्हति" निरु० १.२.१२.

३ अन्वारभामहे=अनु–आ–रभामहे, पुनः पुनः स्मरण करते हैं, निरन्तर अपना बना लेते हैं ।

महापुरुषों के वचन—

१—माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥

यह किसी कवि का वचन है। वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

महर्षि दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश द्वि० स०)

२—सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चान्दी, हीरा, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणो के धारण कराने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

महर्षि दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश तृ० स०)

३—दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥ विदुर नीति ७.६१ ॥

दुःखार्तों, अहंकारियों, नास्तिकों, प्रमादियों—आलसियों, असंयमियों अर्थात् विलासियों और जो उत्साह से हीन होते हैं उन के पास लक्ष्मी नहीं रहती है। (विदुर जी)

४—कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ।
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत् ॥ विदुर नीति ७.५५ ॥

मन वचन और कर्म से मनुष्य जिस को पुनः पुनः—बार-बार सेवन करता है, वही इस को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, अतः मनुष्य को चाहिये कि वह सदा शुभ आचरण ही करें।

५— यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ गीता ३.६ ॥

यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मानव समुदाय कर्मों द्वारा ही बन्धता है। इसलिये हे कुन्तिपुत्र अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भली-भांति कर्तव्य कर्म कर। (योगीराज श्रीकृष्ण)

एक घोर वेश्यागामी युवक को उस के हितैषी मित्र महर्षि दयानन्द के पास ले गये और बोले—"महाराज ! इसे सन्मार्ग पर लगाईये।" महर्षि ने वेश्यावृत्ति से होने वाले आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक पतन का चित्र उस के सम्मुख खींचा। फिर उन्होंने पूछा—"युवको ! भला यह तो बताओ कि वेश्यावृत्ति से यदि लड़की उत्पन्न हो, तो वह लड़की किस की हुई ?" युवक के मित्रों ने कहा—"उस वेश्यासक्त पुरुष की।" महर्षि ने पूछा—"युवती होकर वह क्या करेगी ?" वह युवक स्वयं बोला—"भला और क्या करेगी ? बाजार में बैठेगी।" तब महर्षि ने मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा—"देखिये, संसार में कोई भी भला आदमी नहीं चाहता कि उस की पुत्री अपना शरीर बेचे। परन्तु वेश्यासक्त जन ही ऐसे हैं जो अपनी ही बेटियां को वेश्या बनाते हैं। आप ही सोचिये कि क्या यह बुरी बात नहीं ?"

यह सुनकर उस वेश्यागामी युवक के रोंगटे खड़े हो गये। उस ने झट महर्षि जी के चरणस्पर्श किये और सदाचार का व्रत लिया। आगे चल कर वह महर्षि जी का हृदय से शिष्य बन गया और उन के कार्यों में तन मन धन से सहयोग करने लगा।

—स्वामी विवेकानन्द

एक बार मैं काशी में जिस जगह जा रहा था उस जगह एक ओर भारी जलाशय और दूसरी ओर ऊँची दीवार थी। उस स्थान पर बहुत से बन्दर थे। काशी के बन्दर बड़े दुष्ट होते हैं। अब उनके मन में यह विकार पैदा हुआ कि मुझे उस रास्ते पर से वे न जाने दें। वे विकट चीत्कार करने लगे और झट आकर मेरे पैरों से चिपटने लगे। उन्हें निकट आते देखकर मैं भागने लगा। किन्तु मैं जितना ज्यादा जोरसे दौड़ने लगा, वे भी उतनी ही अधिक तेजी से आकर मुझे काटने लगे। उन से छुटकारा पाना मुझे असम्भव सा प्रतीत होने लगा। ऐसे ही समय में एक अपरिचित जन ने मुझे जोर से आवाज दी—"बन्दरों का सामना करो।" मैं भी जैसे ही उलट कर कर उन के समान खड़ा हुआ, वैसे ही वे पीछे हटकर भाग गये।

समस्त जीवन में, जो कुछ भी भयानक है—उस का हमें सामना करना पड़ेगा. साहस पूर्वक उस के सम्मुख खड़ा होना पड़ेगा। यदि हमें मुक्ति या स्वाधीनता का अर्जन करना है, तो प्रकृति को जीतने पर ही हम उसे पायेंगे, प्रकृति से भाग कर नहीं। कायर पुरुष कभी विजय नहीं पा सकते। हमें भय, कष्ट और अज्ञान के साथ संग्राम करना पड़ेगा, तभी वे हमारे सामने से भागेंगे।

महापुरुष चरितम्—

महर्षि दयानन्द

प्रयाग में गंगा के तट पर एक महात्मा जी रहते थे। वे बड़े वृद्ध थे। जब कभी महर्षि दयानन्द जी उन्हें मिलते, तो महर्षि जी को वे 'बच्चा' कहकर सम्बोधित करते। एक दिन उस वृद्ध महात्मा ने महर्षि जी को कहा—"बच्चा, अगर तू पहले से ही निवृत्ति-मार्ग में स्थिर रहता और इस परोपकार के झगड़े में न पड़ता तो तू इसी जन्म में मुक्त हो जाता। अब तो तुम्हें एक ओर जन्म धारण करना पड़ेगा।"

महर्षि ने कहा—"महात्मन्! मुझे अपनी मुक्ति का कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों जनों की मुक्ति की चिन्ता मुझे चलायमान कर रही है उनकी मुक्ति हो जाए, मुझे भले ही क्यों न कई जन्म धारण करने पड़ें। दुःखों से, कष्टों से, आपत्तियों से, दीन-हीन अवस्था से परम पिता परमेश्वर के इन पुत्रों को मुक्ति दिलाते-दिलाते मैं स्वयं ही मुक्त हो जाऊंगा।

स्वामी श्रद्धानन्द

१४ श्रावण सम्वत् १६३६ को क्रान्ति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द बरेली पधारे। मुंशीराम के पिता श्री नानक चन्द जी को आदेश मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों में कोई उपद्रव न हो ऐसा प्रबन्ध करें। प्रबन्ध के लिये वे स्वयं सभा में गये और महर्षि के व्याख्यान से बड़े प्रभावित हुए, साथ ही उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि उनके नास्तिक पुत्र की संशय-निवृत्ति उनके सत्संग में हो जायेगी। घर आकर उन्होंने मुन्शीराम से कहा—"बेटा मुन्शीराम! एक दण्डी संन्यासी आए हुए हैं, वे बड़े ही विद्वान् महापुरुष हैं। उन का व्याख्यान सुनने पर मुझे विश्वास है तुम्हारे सब संशय दूर हो जायेंगे। कल तुम उन का व्याख्यान सुनने के लिये मेरे साथ चलना।"

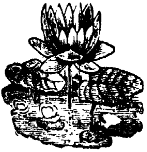
दूसरे दिन जब मुंशीराम जी अपने पिता जी के साथ वहाँ व्याख्यान सुनने गये। तो ज्यों ज्यों वे महर्षि दयानन्द सरस्वती का व्याख्यान सुनते गये त्यों त्यों उनका हृदय महर्षि की ओर आकर्षित होता गया। उस दिन मुन्शीराम जी को ऐसा लगा कि जैसे किसी भटके हुए मानव को कोई राह मिल गई हो, और वह उस राह पर आगे बढ़ने के लिये निरन्तर उत्सुक होता जा रहा हो। महर्षि का उस दिन का व्याख्यान परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' पर था। व्याख्यान के सम्बन्ध में मुंशीराम (जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से अत्यन्त विख्यात हुए) ने स्वयं लिखा है—"वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद मैं कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना उस ऋषि-आत्मा का ही काम था।"

सन्त अब्दुल्ला

एक बार सन्त अब्दुल्ला बाजार से कपड़ा खरीदने के लिये अपने बेटे के साथ बाजार गये। दुकानदार ने उन्हें कपड़ा दिखाया। सन्त अब्दुला ने मूल्य में कुछ कमी के लिये कहा, पर वह वस्त्र विक्रेता

नहीं माना । उस दुकानदार का पड़ोसी उस सन्त अब्दुल्ला को जानता था, अतः वह अपने पड़ोसी उस दुकानदार से बोला, भाई साहब ! "जानते हो, ये कौन है ? अब्दुल्ला सन्त हैं, अब्दुल्ला सन्त हैं।"

अब्दुल्ला सन्त यह शब्द सुनते ही वहाँ से उठ खड़े हुए और अपने बेटे का हाथ पकड़ कर उस से कहने लगे—"बेटा, चलो ! हम यहाँ कपड़ा पैसों से खरीदने आए हैं, अपने दीन से नहीं।" और वे कपड़ा लिये बिना चल दिये। दुकानदार उस महान् सन्त अब्दुल्ला की बात सुनकर उस की महानता पर स्तब्ध हुआ-हुआ देखता ही रह गया।



यजुर्वेद और संख्यायें —

—विजयेन्द्र कुमार गणित विभाग, विज्ञान महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वेदों को शास्त्रकारों ने समस्त ज्ञान का भण्डार बताया है। वेदों के अध्ययन से समस्त शास्त्र उनमें सम्मिलित दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि से यजुर्वेद में 1जिस प्रकार संख्याओं का प्रयोग हुआ है उस प्रयोग में कुछ विशेषता प्रकट होती है। इस प्रकार वेदों के रचना काल में गणित के ज्ञान, पर प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुन लेख में यजुर्वेद के कुछ अश तथा प्रयुक्त संख्याओं की विशेषताओं पर विचार किया गया है। यजुर्वेद का निम्न अंश देखिये।

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत तमुज्जेषमाश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रील्लोका नुदजयत्तानु ज्जेषं सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥

पूषो पञ्चाक्षरेण पञ्चदिशऽउदजयत्ता उज्जेषं सविता षडक्षरेण षड् ऋतू नुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशनुदजयंस्तानुज्जेषम् ॥ मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोम मुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्ता मुज्जेषमिन्द्र उ एकादशाक्षरेणं त्रिष्टूभमुदजयत्ता मुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयंस्ता- मुज्जेषम् ॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयं स्तमुज्जेषं रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोममुद जयं स्त मुज्जेषम्।

आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशं स्तोममुद जयसं–स्तमुज्जेषमदिति षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोम मुदजयस्तमुज्जेषं प्रजापतिः।

सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोममुदजयत्त–मुज्जेषम ॥

प्रस्तुत अश में जिन संख्याओं का प्रयोग किया गया है उन का समुच्चय निम्न प्रकार है (१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९. १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७) इस समुच्चय को निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता है—

स=[यः य=प्र कृ त संख्या, य < १८]

निम्न अंश पर विचार करते है —

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणऽएकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभो वर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः। गर्भाः पञ्चविंशऽओज स्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्यविष्टपं चतुरित्रंश नाकः षट्त्रिंशो विवृत्तोऽष्टा–चत्वारिंशो धर्त्रंचतुष्टोमः।

इस अंश में प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय निम्न प्रकार है—

स=(१५, १७, २१, १८, १९, २०, २२, २३, २४, २५, ३१, ३३, ३४, ३६, ४८)

ऐसी संख्या को जो सोची गयी बड़ी से बड़ी संख्या से भी बड़ी हो उसे अनन्त कहा गया है। यजुर्वेद में इसका वर्णन भी है। इसके लिये निम्न अंश देखें—

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधिभूम्याम् ।
तेषा सहस्र योजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

निम्न अंश में संख्याओं का प्रयोग विशिष्ट है। ये संख्याए विशेष प्रकार की है।

एका च मे तिस्रश्च में तिस्रश्च में पञ्च च में सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मेऽ एकादश च म ऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च में नवदश च म ऽएकविं शतिश्च म ऽएक विंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च में त्रयोविं शतिश्च मे पञ्चविं शतिश्च मे पञ्चविं शतिश्च मे सप्तविं शतिश्च मे सप्त-विं शतिश्च मे नवविं शतिश्च मे नवविॉं शतिश्च म ऽएकत्रिं शच्चम ऽएकत्रिंश्च्च में ऽत्रयस्त्रिं-शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

इस अंश में प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय इस प्रकार है—

स=(३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, ११, २३, २५ २७, २९ ३१, ३३)

इसे निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता है—

स=(यः य=विषय प्राकृत संख्या, य < ३४) इस अंश में समस्त संख्याए दो से विभाजित न होने वाली हैं।

अगले अश में प्रयुक्त संख्याए भी अति विशिष्ट हैं।

चतस्रश्च मे ऽष्टौ च मे ऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशति-श्च मे विंशतिश्च में चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मेंं षटत्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वरिंशचच मे ऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय —

स=(४. ८. १२, १६, २०, २४, २८, ३२. ३६, ४०, ४४, ४८,)

अथवा

स=(यः य=४ न. न=१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२)

इस प्रकार सब संख्याएं, संख्या चार की गुणक होने के कारण विशेष है।

अभी तक प्रयुक्त संख्याएं पूर्णाङ्क थी। संख्या के विभाजन का कहीं विवरण नहीं था। अगले अंश में इस तरह की संख्याए प्रयुक्त हुई है जो एक संख्या और दूसरी संख्या के बीच मे आती है। अर्थात् पूर्ण संख्या की आधी संख्या का प्रयोग किया गया है।

त्र्यवयो गायत्र्यै पंचावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽअनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे ॥

इस अंश में प्रयुक्त संख्याओं का समुच्चय निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$स = \left\{ १\frac{१}{२}, २, २\frac{१}{२}, ३ \right\}$$

$$अथवा\ स = \left[\frac{३}{२}, \frac{४}{२}, \frac{५}{२}, \frac{६}{२} \right]$$

$$अथवा\ स = [यः\ य = १\text{-}२\ क,\ क = ३, ४, ५, ६]$$

इस प्रकार संख्याओं के अर्धांशों का प्रयोग देखने को मिलता है।

आधुनिक गणित में संख्यओं को एक रेखा की सहायता से प्रकट किया जाता है। शून्य मध्य में

होता है। दाहिनी ओर शून्य से बाद आने वाले अंक १, २, ३, ४—इत्यादि अनन्त तक और बायीं ओर —१, —२, —३, —४·········ऋणात्मक अनन्त तक प्रदर्शित किये जाते है। धनात्मक अनन्त को अति दीर्घ तथा ऋणात्मक अनन्त को अति लघु भी कहा जाता है। यजुर्वेद में इनका प्रयोग भी मिलता है। निम्न अंश देखिये।

अथैतानष्टौ विरूपाना लमतेऽतिदीर्घः चाति ह्रस्वं चाति स्थूलं चाति-कृशं चाति शुक्लं चाति कृष्णं चाति कुल्वं चाति लोमशं च। अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मा गृध्रः पुंश्चलीकितवः क्लोबोऽशूद्राऽब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः।

एक सौ की संख्या का प्रयोग बहुत बार हुआ है। यजुर्वेद का एक अंश इस प्रकार है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्
शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

इस प्रकार यह विदित होता है कि कई स्थलों पर संख्याओं का प्रयोग किसी नियम के अनुसार हुआ है अर्थात् प्रयुक्त संख्याएं किसी विशेष लय में है और अधिक अध्ययन से कुछ और भी विशेषताओं की जानकारी मिलने की सम्भावना है। इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन करने पर वेदो में वर्णित ऐसे नियमों की जानकारी मिल सकती है जो बहुत दिनों बाद संसार को ज्ञात हो सके और यह भी हो सकता है कुछ ऐसे नियम ज्ञात हो जो अभी तक अज्ञात है। इस प्रकार वेदो में सम्पूर्ण ज्ञान के दर्शन होते हैं।



वैदिक जीवनम्—

—प्रोफेसर मनुदेव "बन्धु" वेद विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

१ ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट,
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनस्कृणोमि ।। अथर्व का० ३.३०.५ ।।

व्याख्या—ज्यायस्वन्त इति-कश्चित् कुलवृद्धः स्वपरिवारजनान् उपदिशति-हे वत्साः ! अस्माकं परिवारस्य सर्वे सदस्या पुरुषायुष-जीविनो भूयासुः येन यूयं ज्यायस्वन्तः प्रकृष्ट कुलवृद्धवन्तः पूजनीयान् पूजयन्तः । चित्तिनः युक्ताऽयुक्तविवेचनचतुरा सम्यक् चिन्तनपराः । संराधयन्तः सहोद्योगेन कार्याणि साधयन्तः । सधुराश्चरन्तः । समान-कार्यभाराः. "धूर्यानमुखभारयोः" इति हेमचन्द्राचार्याः । तथा 'धूः स्त्री क्लीबे यानमुखम्" । इत्यमरः । अथवा एक धुरि नियुक्ता अश्वा इव समानगतयो न तु परस्परविपरीतप्रयत्ना इत्यर्थः । अन्यो-अन्यस्मै वल्गु वदन्तः परस्पर मधुरमालपन्तः एत दिवसावसाने समवेता भवत । मां प्रत्यागच्छत वा । अनेन विधिना व्यवहरतो-युष्मान् अहं सध्रीचीनान् समानगतिकान् समानपूजितपूजितव्यान् संमनसः समानभावनावतश्च कृणोमि करोमि । सह पूर्वस्य अञ्चतेः "सहस्य सध्रिः" (अष्टाध्यायी ६.३.९५) इति सुलोपः सहेत्यस्य सध्रिरित्यादेशे कृते ख प्रत्ययेरूपम् । ज्यायस्वन्तः—"वृद्धस्य च" (अष्टाध्यायी ५.३.६२) इति सूत्रेण वृद्धशब्दस्य ज्यादेशे, ततश्च "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" (अष्टा० ५.३.५७) अनेन सूत्रेण ईयसुनि कृते ततश्च मतुप्प्रत्यये मकारस्य च "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" (अष्टा० ८.२.९) इत्यमुना वकारादेशे रूपम् । यस्मिन् कुले परिवारे वा तस्य वृद्धजनाना समुचितः सत्कारः पूजा च विधीयते, यत्र च तादृशाः प्रशस्ताः स्थविराः सर्वसदस्येषु समानवृत्तया नवयुवकाना सम्यक् पथ प्रदर्शनं समाचरन्ति तत्र सर्वाः सुखसम्पत्तयो नवनवाभ्युदयाश्च चिरपरिभ्रमणश्रान्ता अत एव स्थायिनिवासाभिलाषुका इव स्वयं समवेता भवन्ति । तस्माच्छ्रेयस्कामैर्मतिमद्भिः स्वकुलवृद्धाना सेवायै सर्वदा तत्परैर्भाव्यमिति वस्तु ध्वनिः । मन्त्रेऽस्मिन् ज्यायस्वन्तः चित्तिनः मा वियोष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः, अन्योऽन्यस्मै वल्गुवदन्तः, सध्रीचीनान्ः संमनसः इत्येकपदानि क्रमेण प्रशस्तवृद्धवन्तः, निरतिशयचारु चिन्तनचतुराः, कदाचिद् विद्वेषादिना विच्छिन्ना न भवत, संभूय कार्याणि साधयन्तः, उदूढसमानकर्त्तव्यभरा, नितरां मधुरमालपन्तः, कदाचित् सत्यपि वैमत्ये कटुत्व दूरतः परिहरन्तः, समानगतिकान्, समान हृदयभावान् इति स्वकीयमेव अर्थान्तरं लक्षयन्ति । तदतिशयप्रकाशन च फलम् । वाक्यगतोऽर्थान्तरसंक्रमितवाच्यो ध्वनिः । सधुराश्चरन्त इत्यनयोः पदयोः समानायामेकस्या धुरि रथादेरग्रभागे नियुक्ताः इति सधुरा अश्वा इति योजनायां लुप्तोपमता उपमाऽत्र सम्भवति । अस्मिन् प्रसंगे रथस्य धुरो वाच्यार्थो बाधितः भोजनावसरे सैन्धवमानयेत्युक्ते हयाऽऽनयनवत् । धूः पदसान्निध्यादिह अश्वाध्याहार उपमानार्थमुपयुक्त एव ।

भावार्थः—सर्वे मानवाः परस्परं भ्रातृरूपेण व्यवहरेयुः । परिवारे वृद्धाः समाद्रियन्ताम् । तेषामादेशानुसारि कार्यं कुरुत ।

वैदिक रश्मियाँ—

—रामप्रसाद वेद लङ्कार

१ जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् ।। अथर्व ३.३०.२ ।।

अन्वयार्थ : (जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाच वदतु) पत्नी पति के लिये मधुमयो श न्तियुक्त वाणी बोले।

पत्नी को चाहिये कि वह पति से मधुमयी शान्तिमयी वाणी से ही बोले। और पति को भी चाहिये कि वह भी पत्नी से जब बोले तो मधुमयी शान्तिमयी वाणा से ही बोले।

इस प्रकार जाया और पति-पत्नी और पति जब परस्पर माधुर्ययुक्त शान्तिमयी वाणी बोलेंगे तो इस से उन की शक्ल और अक्ल दोनों सही-सलामत बनी रहेंगी, उनकी अ कृति और प्रकृति [=स्वभाव वा बुद्धि] ठीक-ठाक बनी रहेगी।

नारी और नर=पत्नी और पति जब मन से यह सोच लेंगे-विचार लेंगे-निश्चय कर लेंगे कि उन्हें वेद के आदेशानुसार परस्पर मधुमयी, शान्तिमयो वाणी ही बोलनी है, अर्थात् मधु-शहद के समान मीठी और दोषनिवारक तथा चित्तरूपी भूमि पर सुख-शान्ति की वर्षा कर के उस को हरा-भरा करने वाली वाणी ही बोलनी है, तो फिर निसन्देह उस के जो सुखद परिणाम होने चाहियें, वे अवश्य होंगे तथा वे दोनों उन को देख-देख कर कृतकृत्य होंगे।

ऋग्वेद मं० १० सूक्त ८५ का ४४ वाँ मन्त्र है, जिस में नारी को उपदेश दिया गया है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमना सुवर्चा।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

हे नारि! सर्वरक्षक प्राणाधार दुःखविनाशक, सुखस्वरूप सब सुखों के देने हारे उस परमपिता परमेश्वर की अनुकम्पा से तू पति की कभी भी हिंसा न करना। मुख से कड़वे बोल आदि अन्य नाना प्रकारों से हिंसा करने की बात तो दूर रही तू तो सदा अघोरचक्षुः रहना अर्थात् अपनी आँखों में भी क्रोध के कारण कभी लाली मत आने देना। इतना ही नहीं, तू तो इस से भी आगे बढ़कर सुमनाः-सुन्दर मन वाली, तेजोमयी, वीरों को जन्म देने वाली बन, देवरों को भ्रातृसम घर परिवार में विद्यमान रखना चाहने वाली बन। फिर मुझे ही नहीं मेरे भाई-बहिनों को ही नहीं, मेरे माता पिता आदि को ही नहीं वरन् मेरे घर में विद्यमान रहने वाले इन चोपाओं तक को भी अपने उत्तम शान्त मन से स्योना-सुख देने वाली और शिवा उनका कल्याण करने वाली बन।

वेद के उपर्युक्त मन्त्र का यह उपदेश कितना सारगर्भित है कि वह 'अपतिघ्नी' हो-पति की कभी हिंसा न करने वाली हो-उस का हनन न करने वाली हो। इस का केवल इतना ही अभिप्राय नहीं है कि

वह केवल बाह्य दृष्टि से ही हनन-हिंस न करने वाली हो, यहाँ तक कि उस का मन भी ऐसा अहिंसक हो जाए कि उस की आँखों में भी कभी फिर अपने पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति क्रोध के कारण लाली न आने पाए। तभी तो उस को वेद में 'अघोर चक्षु' कहा गया है। यदि सचमुच वह वेद के इस मन्त्रानुसार 'सुमना'—सुन्दर मन वाली बन जायेगी तो फिर आँखों में क्रोध के कारण लाली आने की तो बात पृथक् रही वहाँ से तो फिर उल्टा स्नेह के स्रोत प्रवाहित होने लगेंगे। तब फिर वह केवल अपने पति के लिये ही नहीं वरन् उस के सब परिवार के सदस्यों के प्रति स्योन—सुखदायिनी बन जायेगी, शिवा—कल्याणकारिणी बन जायेगी। तब वह सहज ही सूनृता बन जायेगी, अर्थात् सब के प्रति उस के मुख से फिर सत्य और मिठास से युक्त वाणी प्रवाहित होने लगेगी। इसी सहज स्वाभाविक दिव्य व्यवहार को प्रभु घर परिवार में देखना चाहता है। तभी तो वेद के द्वारा वह हमें यह उपदेश देता है कि—"पत्नी पति के प्रति जब भी बोले तो वह शान्तिमयी मधुरवाणी से ही बोले। और ऐसा ही शान्त मधुर व्यवहार पति को भी पत्नी के प्रति सदा करते रहना चाहिये।

वेद ने दम्पती को—जाया-पति को यह आदेश, यह उपदेश क्यों दिया? इसलिये कि पत्नी-पति के इस व्यवहार का जहाँ उनकी आकृति और प्रकृति पर, उन की शक्ल और अक्ल पर, उन के बाह्य व्यवहार और आन्तरिक स्वभाव पर, उन के मन और मस्तिष्क पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है वहाँ इस का परिवार में आने-जाने वालों पर तथा विशेष कर आने वाली पीढ़ी पर—आने वाली सन्तति पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। नारी-नर के—जाया पति के इस शान्तिमय मधुरप्रिय व्यवहार से जो घर-परिवार का Environment वातावरण बनता है वह बड़ा निराला होता है। बच्चे मूकरूप से इस से इतने प्रभावित रहते हैं कि उन के हृदयों में सहज ही अपने जननी-जनक-अपने माता-पिता के प्रति बड़ी श्रद्धा हो जाती है। जिस घर में ऐसा नहीं हो पाता वहाँ का वातावरण बहुत ही खराब रहता है जैसे एक घर में पति रात को घर लेट आया। पत्नी ने भोजन तो उनके लिये परोस दिया पर दाल सब्जी रोटी सब कुछ ठण्डा हो था। पति ने कहा—"यह भोजन तो बिल्कुल ठण्डा है, जरा गर्म कर दो।" वह पहले ही से गुस्से मे थी, क्योंकि पति-देव आज बड़ी देर से आए। अतः क्रोध के कारण न तो अब वह स्योना-सुखदायिनी ही रह पायी और न हो शिवा—कल्याणकारिणी। इसलिये उस ने उत्तर दिया, "सुबह से, बोस बार तो चूल्हे में सिर दे चुकी, अब आप ही बताओ, ११ बजे हैं आप को तो गप्पों से ही फुरसत नहीं, है कब तक चूल्हे में मैं आग फूकती रहूँ।" पति से भी अपनी त्रुटि को अनुभव करते हुए धैर्य और शान्ति पूर्वक चुप-चाप नहीं रहा गया। अतः वह बोला आगबबूला होकर कि "आग लगे ऐसे भोजन को, सारा दिन मेहनत करते हैं, इतने पर भी यदि गर्म भोजन नसीब नहीं, तो क्या यह कुछ जीवन है! यह लो अपनी रोटी, मैं होटल में चला जाता हूँ। अभी बारह-एक बजे तक तो वे खुले ही रहते हैं।" यह कहते हुए थाली को वह परे फेंक कर होटल की ओर चल दिया। नारी तो पहले ही घोरचक्षुः, अस्योना और अशिवा बनी हुई थी, अतः वह भी बोली, 'जहाँ आपकी मरजी हो भोजन खाओ, मुझे भी कोई यह भोजन बनाने का ही काम थोड़े है, और भी अनेकों मेरे काम हैं। सारा-सारा दिन ही यदि मैं चूल्हा फूंकती रहूँ तो फिर और कार्य कौन करेगा? यह सब कहती हुई यह तो सो जाती है और वह भी होटल में भोजन खाकर चुपचाप अपनी खाट पर आकर सो जाता है। इन के इस व्यवहार का इन के घर-परिवार के वातावरण पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी ही एक बहन ने मुझे कहा कि हमारी इस विकृत स्थिति को देखकर जब हमारा ही पुत्र हमें समझने लगता है और कभी कभी जब हमें यहाँ तक कहता है कि, 'माता जी! जब पिता जी नहीं मानते तो आप ही मान

जाएं या पिता जी !' यदि माता जी नहीं शान्त होती तो आप ही क्रम से कम शान्त हो जाइये।" तो ऐसे समय भले ही हम गुस्से में हों और कुछ का कुछ बोले जा रहे हों पर उस बेटे के सम्मुख भीतर ही भीतर हम अत्यन्त लज्जा का अनुभव कर रहे होते हैं इत्यादि।

इस के विपरीत एक दूसरा घर है उस में भी गृहस्वामी जब लेट आता है तो झट नारी उठ कर उस को भोजन परोसती है। थोड़ा बहुत कुछ थाली में परोस कर शेष सब गर्म करने के लिये आग जलाती है, तो इतने में बच्चा जाग जाता है और रोने लगता है। वह झट बच्चे को गोद में ले लेती और तवे पर गर्म करने के लिये रोटी रखती है। उधर बच्चा बराबर रोता जाता है। उस के रोने से माँ ने ऐसा अनुभव किया जैसे कि बच्चे के पेट में दर्द हो, तो वह झट घी ले कर जहाँ उस के पेट को मलती है वहाँ दूसरे हाथ से रोटी शाक आदि भी गर्म करती जाती है। तब तक पति को ठण्डी रोटी खाती हुए देखकर नारी कहती है, 'पतिदेव ! मेरा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि हृदय से न चाहती हुई भी मैं आप को ठण्डो दाल रोटी खिला रही हूँ......।" यह सुनकर पति बोला, 'देवी ! तेरा दोष नहीं, दोष तो मेरा है कि मैंने व्यर्थ की गप्पों में इतना समय गवां दिया और फिर ११ बजे के बाद ही मैं घर में आया फिर भी धन्य हैं आप, जो इतनी सरदी में भी बिस्तर से उठकर मुझे इतने स्नेह-सम्मान से भोजन करा रही हैं। फिर उधर बच्चे के पेट मे दर्द है, अतः उस को भी मल रही हैं। सचमुच यदि मैं ही समय पर आ जाता और सब बच्चों के साथ मिल-जुल कर समय पर ही भोजन कर लेता तो फिर आप को भी नींद न खराब होती और मैं भी समय पर सोकर प्रातः समय पर उठ जाता और अपने दैनिक सन्ध्या हवन से निवृत्त होकर समय पर ही अपने कार्य पर जा सकने में सक्षम हो सकता। और अब जो हो गया सो हो गया आगे मैं पुनः ऐसी भूल करने से बचने का पूर्ण प्रयास करूंगा।

सचमुच जब जाया-पत्नी अपनी न्यूनता-कमी-त्रुटि को अनुभव करती हुई सुमना होकर-स्योना होकर-शिवा होकर जहाँ पति के प्रति शान्त एवं मधुमय वचन बोलती है तो वहाँ फिर पति भी अपने ही भीतर झांक-झांक कर अपनी ही न्यूनताओं को अनुभव करते हुए नारी के प्रति शान्त एवं मधुमय तथा सहानुभूति पूर्ण वचन ही बोलने लगता है। फिर इन दोनों के इस शान्त मधुर एवं प्रिय तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का घर परिवार के वातावरण पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। यहाँ तक कि जिस नन्हे-मुन्ने बालक का पेट माँ मलती हुई पति की भोजन आदि द्वारा सेवा कर रही थी उस पर भी अनूठा ही प्रभाव पड़ता है। तभी तो वेद ने यह आदेश दिया, यह उपदेश दिया कि पत्नी पति के प्रति शान्तिमय मधुर वचन बोले और पति भी ऐसा ही व्यवहार करे।

जगद्गुरुशंकराचार्य का दर्शन —

—डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री
भूतपूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग डी. ए. वी कॉलेज देहरादून

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य अप्रतिम प्रतिभा-सम्पन्न अति सूक्ष्म दृष्टि के चिन्तक हुए हैं। वे दर्शनाकाश के देदीप्यमान सूर्य हैं। उनकी प्रतिभा, चिन्तन एवं प्रतिपादन शैली से प्रभावित होकर विश्व के सभी विद्वानों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसका कारण उनकी विलक्षण प्रतिभा एवं उनके दर्शन का अद्वितीय रूप है। दर्शन के क्षेत्र में ऐसा सूक्ष्म चिन्तक कोई अन्य विद्वान् नहीं हुआ है। अपनी अल्पावस्था में ही जो कार्य आचार्य शंकर ने कर दिखाया वह अन्य किसी दार्शनिक से सम्भव नहीं हो सका है। कहा जाता है कि आठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन कर लिया था और बारह वर्ष की अवस्था तक शेष सभी शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने वादरायण के सूत्रों पर गीता एवं दश प्रधान उपनिषदों पर भाष्य लिखा। दर्शन के क्षेत्र में इस को 'प्रस्थान त्रय' कहा जाता है। अपने परम गुरु गौडपादाचार्य की माण्डूक्य कारिका पर भी इन्होंने भाष्य लिखा। शंकराचार्य को शिव का अवतार कहा जाता है। अपनी विलक्षण दार्शनिक प्रतिभा के द्वारा इन्होंने एक ऐसे दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना की है जो न तो एकदम भौतिकवाद है, न कोरा कर्मवाद और न शुष्क ज्ञानवाद। आचार्य शंकर का यह सिद्धान्त वैदिक धर्म एवं दर्शन पर आधृत अद्वैतवाद का सिद्धान्त है। आचार्य शंकर का अद्वैतवाद कर्म और ज्ञान, स्थूल और सूक्ष्म के समन्वय का सिद्धान्त है। यद्यपि इस सिद्धान्त के बीज वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिताओं, आरण्यक और उनिषदों में विद्यमान थे, किन्तु उनके असमन्वित होने के कारण वैदिक दर्शन सुबोध्य नहीं था। महर्षि वादरायण ने औपनिषदिक दर्शन के सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध किया और आचार्य शंकर ने मायावाद के सिद्धान्त की स्थापना के साथ उन सूत्रों की समन्वित व्याख्या करके अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया एवं उपनिषदों के विरोधी सिद्धान्तों मे सामञ्जस्य स्थापित किया। उनकी यह समन्वयवादिता भारतीय-दर्शन के क्षेत्र में बेजोड़ है।

दर्शन-शास्त्र की दुरूहता प्रसिद्ध है, किन्तु आचार्य शंकर इसके अपवाद हैं। उन्होंने मूल्य ग्रन्थों पर भाष्य रचना के द्वारा साहित्य और दर्शन का संयोग करके दार्शनिक विषय को भी सरस एवं सरल बना दिया है। उनके भाष्य ग्रन्थों की शैली अति मनोरम एवं सुबोध्य है।.

शंकराचार्य का जन्म—

आचार्य शंकर का जन्म केरल प्रान्त के 'कालटी' नामक ग्राम में हुआ था। कालटी को ही कालड़ी और कालाधी भी कहा जाता है। केरल प्रदेश में कोचीन शेरामूर रेलवे लाईन पर 'आलवाई' नामक एक छोटा स्टेशन है। इस स्टेशन से दक्षिण की ओर कालटी लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है। शंकराचार्य के माता-पिता 'पल्नियूर' ग्राम के निवासी थे, परन्तु बाद में वे कालटी में आकर बस गये थे। इसी ग्राम में नम्बूदरी ब्राह्मण परिवार में ७८८ ई० में शिवगुरु के घर में शंकर का जन्म हुआ ऐसा माना

जाता है। डा० के० वी० पाठक ने अनेक तर्कों के आधार पर शंकर का ७८८ से ८२० ई० स्थिति काल माना है। तीन वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता का निधन हो गया। आठ वर्ष की वयस् में ही इन्होंने सन्यास ले लिया। इसके पश्चात् काशी में निवास करते हुए इन्होंने विविध भाष्य एवं ग्रन्थों की रचना की।

शंकराचार्य की रचनाएं—

शंकराचार्य के नाम से बहुत सी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। यह निर्णय करना कुछ कठिन कार्य है कि इन रचनाओं में आदि शंकराचार्य की रचनाएं कौन सी है, क्योंकि शंकराचार्य ने देश के चारों भागों में चार मठों की स्थापना की थी। और उन मठों की गद्दी पर आसीन होने वाले व्यक्ति भी शंकराचार्य ही कहलाते रहे हैं। उनमें से बहुतों ने शंकराचार्य के नाम से ही ग्रन्थों की रचना की है। अतः यह निर्णय करना अति कठिन कार्य है कि प्रस्थान त्रयी के भाष्यों के अतिरिक्त जो ग्रन्थ शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं उनमें से आद्य शंकराचार्य के कितने हैं। इन सभी ग्रन्थों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१—भाष्य ग्रन्थ   २—स्तोत्र ग्रन्थ   ३—प्रकरण ग्रन्थ   ४—तन्त्र ग्रन्थ।

१—भाष्य ग्रन्थ—भाष्य ग्रन्थ दो प्रकार के हैं (क) प्रस्थान-त्रयी—ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों के भाष्य और इनके अतिरिक्त इतर ग्रन्थ—विष्णु सहस्र नाम और सनत्सुजातीय पर भाष्य।

प्रस्थान त्रयी के भाष्य ग्रन्थ—

१—ब्रह्म सूत्र पर भाष्य शंकराचार्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ब्रह्म सूत्र पर भाष्य है। इसकी शैली बड़ी ही परिमार्जित एवं प्राञ्जल है। इस प्रकार की भाषा, विशेषतः दर्शन ग्रन्थों में अन्यत्र मिलना कठिन है। ब्रह्मसूत्र चार अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय चार पदों में। इसमें इतर मतों का निराकरण करते हुए आचार्य शंकर ने वेद और उपनिषदों को आधार बनाकर अद्वैत सिद्धान्त की युक्तियुक्त स्थापना की है। ब्रह्मसूत्र को ही बादरायण सूत्र, वेदान्त सूत्र एवं शारीरिक सूत्र भी कहते हैं।

२—गीता भाष्य—शंकराचार्य ने गीता पर भाष्य द्वितीय अध्याय के ग्यारहवे श्लोक से प्रारम्भ किया है। इस भाष्य में उन्होंने गीता की ज्ञानपरक व्याख्या की है एवं तत्त्वज्ञान से ही मोक्षप्राप्ति सिद्ध की है।

३-उपनिषद् भाष्य—शंकराचार्य ने (१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) तैत्तिरीय (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) बृहदारण्य एवं (११)श्वेताश्वेतर—इन ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य लिखा है।

इतर ग्रन्थों पर भाष्य ग्रन्थ—

प्रस्थान त्रयी के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों पर भी शंकराचार्य द्वारा रचित भाष्य उपलब्ध हैं, परन्तु इनमें से कुछ को ही प्रामाणिक माना जा सकता है। निम्न ग्रन्थ आचार्य शंकर के ही माने जाते हैं जिनमें (१) विष्णुसहस्रनाम (भाष्य) (२) सनत् सुजातीय (भाष्य)—धृतराष्ट्र के मोह को दूर करने के लिये सनत्सुजात ऋषि ने जो उपदेश दिया था, उसका वर्णन महाभारत में है। इस पर्व को 'सनत् सुजातीय' कहते हैं। अतएव इसका भाष्य सनत् सुजातीय भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) ललिता त्रिशती भाष्य—ललिता त्रिशती में ललिता माता के तीन सौ नामों का उल्लेख है। आचार्य शंकर ने इन भाष्य में इन नामों की व्याख्या उपनिषद् तथा तन्त्रों के प्रमाण के आधार पर की है।

(४) माण्डूक्य कारिका भाष्य – आचार्य शंकर के परम गुरु गौडपादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् पर कारिकाएं लिखी हैं। इन्हीं कारिकाओं के ऊपर आचार्य शंकर ने भाष्य लिखा है। यह ग्रन्थ अति महत्वपूर्ण है।

२—स्तोत्र ग्रन्थ—

आचार्य शंकर अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक होते हुए भी व्यवहार में सगुण ब्रह्म उपासक थे। इसीलिये उन्होंने शिव, विष्णु, गणेश, शक्ति प्रभृति देवताओं के सम्बन्ध में स्तोत्र एवं स्तुतियां लिखी हैं।' इन स्तोत्रों में साहित्यिक और दार्शनिक दोनों प्रकार की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। इनमें गणेश स्तोत्र, शिव स्तोत्र, देवी स्तोत्र, विष्णु स्तोत्र, युगल देवता स्तोत्र आदि शंकर की चौंसठ प्रकाशित रचनाए हैं। वैसे मठों में प्राप्त हस्तलिखित स्तोत्रों को मिलाकर कुल संख्या दो सौ चालीस है। परन्तु शैली और प्रतिपाद्य विषय के अनुशीलन से सभी रचनाएँ आचार्य शंकर विरचित प्रतीत नहीं होती।

३—प्रकरण ग्रन्थ—

सर्वसाधारण को अद्वैत वेदान्त का परिचय कराने के लिये आचार्य शंकर ने कुछ प्रकरण ग्रन्थों की रचना ग्रन्थ में न करके श्लोकों में की है। वेदान्त तत्व के प्रतिपादक होने के कारण इन्हें 'प्रकरण ग्रन्थ' कहा जाता है। उपदेश साहस्री, तत्वबोध, पंचीकरण प्रकरण, विवेक चूड़ामणि आदि उनतालीस ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ आदि शंकराचार्य की भी हो सकती हैं।

४—तन्त्र ग्रन्थ—

प्रपञ्चसार और सौन्दर्य लहरी–ये दोनों ग्रन्थ तन्त्र के हैं और आद्य शंकराचार्य के ही माने जाते हैं।

भारतीय दर्शन को शंकराचार्य की देन—

वैदिक काल से लेकर आज तक दर्शन का चिन्तन-मनन किसी न किसी रूप में होता रहा है। इन सभी चिन्तकों ने भारतीय दर्शन को बहुत कुछ दिया है। परन्तु सभी दार्शनिकों में आचार्य शंकर का

स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने भारतीय दर्शन की आधार शिलाओं को इतना शक्तिशाली बना दिया है कि विश्व का दर्शन भारतीय दर्शन की तुलना में कहीं ठहरता नहीं है। उन्होंने कुछ ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की है जिनके बिना भारतीय दर्शन के स्थापित सिद्धान्त कुछ अपूर्ण से प्रतीत होते थे। शंकर का अद्वैतवाद एक महान् कल्पनात्मक साहस और तार्किक सूक्ष्मता का दर्शन है। इसका उग्र बुद्धिवाद, इसका कठोर तर्क मानव की आशाओं तथा विश्वासों के प्रति उपरामता का भाव लिये अपने मार्ग पर आगे बढ़ता चला जाता है। वेदान्त के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् थीबो ने कहा है—"शंकर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जो विशुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण से सब प्रकार के धर्मतत्त्व सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है, भारत की भूमि में उपजा है। वेदान्त के उन रूपों में से जो शंकर के मत से भिन्न दिशा में जाते हैं अथवा वेदान्त विपरीत दर्शनों में से कोई भी, जहाँ तक साहस, गाम्भीर्य तथा कल्पना की सूक्ष्मता का सम्बन्ध है, शास्त्रीय वेदान्त की तुलना में नहीं ठहर सकते।' सर चार्ल्स इलिएट के मत में 'शंकर का दर्शन संगति, पूर्णता तथा गाम्भीर्य में भारतीय दर्शन में सबसे प्रथम स्थान रखता है।' शंकर के ग्रन्थों को पढ़ते समय यह असम्भव है कि पाठक के मन में इस प्रकार का भाव उत्पन्न न हो कि वह एक ऐसे मस्तिष्क के सम्पर्क में आ गया है कि जो अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ गहराई में जाने वाला तथा अगाध आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है। अपरिमेय विश्व के विषय में अपनी अत्यधिक उच्च भावना के कारण, आत्म सम्बन्धी गूढ़ तत्त्वों के प्रेक्षण के कारण, जिसे सिद्ध न किया जा सके उसके सम्बन्ध में न अधिक और न कम कथन करने का अविचल संकल्प रखने के कारण आचार्य शंकर मध्य-कालीन भारत के दार्शनिक विभूतियों में एक तेजस्वी व्यक्तित्व रखते हैं। उनका दर्शन स्वयं में परिपूर्ण है, जिसको न तो अपने आगे और न पीछे ही किसी अन्य सामग्री की आवश्यकता है। शंकराचार्य की अति विशाल किन्तु साथ ही अति सूक्ष्म चिन्तन धारा के भीतर के एक विशद तथा भावुक प्रवृत्ति की झलक मिलती है। अत्यन्त कठोर तर्क के ऊपर जहाँ आचार्य शंकर को पूर्ण अधिकार प्राप्त है, वहाँ दूसरी ओर उन्हें एक उत्कृष्ट तथा सजीव काव्य पर भी उतना ही अधिकार प्राप्त है। यद्यपि यह दर्शन से भिन्न प्रकार का विषय है उनकी प्रतिभा की किरणों ने विचारधारा के अन्धकारमय कोनों में भी पहुँचकर उन्हें प्रकाशित किया है।

दार्शनिक जगत् को शंकराचार्य की जो प्रमुख देन रही है, उसका स्वरूप निम्न प्रकार है —

(क) अद्वैतवाद का प्रस्थापन (ख) माया का प्रतिपादन (ग) आचार सम्बन्धी विशेषताएँ (घ) कुछ अन्य देन।

(क) अद्वैतवाद का प्रस्थापन—

अद्वैतवाद भारतीय दर्शन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। भारतीय साहित्य में आचार्य शंकर के अद्वैतवाद से पूर्व भी इस सिद्धान्त का वर्णन जहाँ तहाँ मिलता है। संहिताओं में अद्वैत सिद्धान्त का पूर्ण वर्णन न मिलने पर भी अद्वैतपरक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। उपनिषदों में तो इस सिद्धान्त के स्पष्ट रेखाचित्र मिलते ही हैं। बौद्ध दर्शन में माध्यमिक तथा योगाचार भी अद्वयवादी ही थे। साहित्य क्षेत्र में महाकवि भवभूति ने अपने उत्तररामचरितम् नाटक में भी विवर्तवाद के सहारे अद्वयवाद का ही संकेत दिया है।

परन्तु आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद का निरूपण एक नवीन पद्धति से किया था। उनका यह अद्वैतवाद 'केवलाद्वैतवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अद्वैतवादों में शिव शक्ति, शून्य तथा विज्ञान किसी न किसी को अवश्य स्वीकार किया गया है परन्तु आचार्य शंकर एक ब्रह्म को ही अद्वैत सत्य मानते हैं। शंकर अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'—ब्रह्म सत्य है, अनन्त है और ज्ञान रूप है। ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जगत् और जीव की द्वैतानुभूति का निराकरण करके एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करके अद्वैतवाद की स्थापना की है। ब्रह्म, जगत् और जीव की द्वैतावस्था का भान तभी तक रहता है जब तक कि पारमार्थिक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता। इस भेदबुद्धि एवं प्रपञ्च की सत्य प्रतीति का कारण अध्यास है।

अध्यास—

अध्यास सब प्रकार के प्रपञ्च का मूल कारण है। यह अध्यास नैसर्गिक है। अध्यास मिथ्या ज्ञान रूप है। और कर्तृत्व, भोक्तृत्व का प्रवर्तक है। किसी पदार्थ में उससे भिन्न पदार्थ का आरोप ही अध्यास है। इसे आचार्य शंकर ने अविद्या भी कहा है। रस्सी में सर्प का मिथ्या ज्ञान ही आरोप है। अध्यास अर्थात् अविद्या के द्वारा ही रस्सी सर्प के रूप में भासित होती है। परन्तु अविद्या निवृत्ति के पश्चात् रस्सी का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। यही बात ब्रह्म रूप सद्वस्तु और संसाररूप असद्वस्तु के सम्बन्ध में भी विचारणीय है। स्वयं प्रकाश, चेतन, आनन्दस्वरूप ब्रह्म परमार्थ वस्तु है और प्रपञ्च रूप दृश्यमान समस्त जड़ पदार्थ समूह अवस्तु है। ब्रह्मरूप वस्तु के ज्ञान होने पर जगत् रूप अवस्तु का भ्रम दूर हो जाता है। यही अद्वैत सिद्धान्त का सार है। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन विवर्तवाद के सिद्धान्त के आधार पर किया है।

विवर्तवाद—

तात्त्विक परिवर्तन को विकार तथा अतात्त्विक परिवर्तन को विवर्त कहते हैं। दही दूध का विकार है, परन्तु जगत् को ब्रह्म का विकार नहीं कहा जा सकता। ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध में जो सत्य और असत्य के रूप में भिन्नता है वह दही और दूध के सम्बन्ध में नहीं है। इसलिये वह जगत् ब्रह्म का विवर्त है, विकार नहीं।

शंकराचार्य के अद्वैतवाद का मूलाधार तीन प्रकार की सत्ताओं की परिकल्पना है। ये सत्ताएं-प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता है।

प्रातिभासिक सत्ता—

प्रातिभासिक सत्ता के अनुसार प्रतीतिकाल में असत्य वस्तु सत्य भासित होती है। परन्तु बाद में इस असत्य वस्तु का बाध हो जाता है। शुक्ति-सीप में रजत–चाँदी की प्रतीति प्रातिभासिक सत्ता के अनुसार ही है। बाद में सीप का ज्ञान होने पर चाँदी की प्रतीति का निराकरण हो जाता है। यही बात

रस्सी और साँप के दृष्टान्त में भी है। साँप और रस्सी आदि का प्रातिभासिक ज्ञान भी निराधार नहीं होता। साँप का आधार रस्सी है और चाँदी का आधार सीप।

व्यावहारिक सत्ता—

जगत् के समस्त पदार्थों की सत्ता व्यावहारिक है। जगत् के व्यावहारिक पदार्थ केवल व्यवहार में सत्य हैं। परमार्थ दृष्टि से ये सब मिथ्या हैं। ब्रह्म का ज्ञान होने से पूर्व ही व्यावहारिक जगत् की सत्य प्रतीति होती है। इसी अवस्था में समस्त लौकिक व्यवहार सत्य प्रतीत होते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक सत्ता की स्थापना के द्वारा आचार्य शंकर ने लौकिक व्यवहार की वास्तविकता की रक्षा की है।

पारमार्थिक सत्ता—

ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक है। यह सत्ता ही एकान्त रूप से सत्य है एवं तीनों कालों में अबाधित रहती है। ब्रह्म-भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में विद्यमान रहता है। पारमार्थिक सत्ता अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर प्रातिभासिक एवं व्यावहारिक सत्ताओं का बाध हो जाता है। पारमार्थिक सत्ता ही अद्वैत सिद्धान्त की पोषक है। इस प्रकार पारमार्थिक सत्ता के द्वारा आचार्य शंकर ने अपने अद्वैतवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की है। जिस प्रकार ब्रह्म से पृथक् जगत् की सत्ता अविद्याजन्य है, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भेद भी अविद्याजन्य ही है।

जीव—

अन्तः करण समन्वित चैतन्य जीव कहलाता है। वस्तुतः शुद्ध ब्रह्म ही अज्ञान की उपाधि के संयोग से जीव रूप से विद्यमान रहता है। शरीर तथा इन्द्रिय समुदाय के ऊपर शासन करने वाला और कर्म के फलों का भोगने वाला यही जीव है। यह चैतन्य स्वरूप है। जीव अविद्या के वश में होकर शरीर और इन्द्रियों के साथ अभिन्नता प्राप्त करके शरीरादि के दुःख का भोक्ता है। इसलिये अविद्या के दूर होने के पश्चात् जीव ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' जिस प्रकार जल में दिखायी पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब जल के अनुसार ही रूप ग्रहण करता है। जल में कम्पन आने पर सूर्य के प्रतिबिम्ब में भी कम्पन आने लगता है। परन्तु बिम्बस्थानीय सूर्य स्वतन्त्र रहता है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं होता। उसी प्रकार ब्रह्म भी वस्तुतः विकारहीन एवं एकरूप है।

शंकराचार्य ने विवर्तवाद, अध्यास तीन प्रकार की सत्ताएं एवं जीव सम्बन्धी सिद्धान्तों के आधार पर अपने अद्वैतवाद के सिद्धान्त की स्थापना की है। इन सिद्धान्तों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का स्वरूप नितान्त मौलिक एवं तर्क के आधार पर प्रतिष्ठित है।

माया का प्रतिपादन—

मायावाद का सिद्धान्त अद्वैतवेदान्त का मूलभूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के बिना अद्वैत सिद्धान्त की पुष्टि असम्भव है। यही कारण है कि मायावाद के सिद्धान्त से पूर्व भारतीय-दर्शन में अद्वैत की विचारधारा की पुष्टि न हो सकी। आचार्य शंकर ने मायावाद के सिद्धान्त को स्थापित करके भारतीय

दर्शन की अद्वैत विचारधारा को सुपुष्ट बना दिया है। उन्होंने अविद्या एवं जगत् मिथ्यात्व के रूप में मायावाद के सिद्धान्त का विकास किया है। उन्होंने माया को ब्रह्म की अविद्यात्मिका बीज–शक्ति कहा है। अग्नि की अपृथक्भूत दाहक शक्ति के समान ही माया ब्रह्म की अपृथक्भूता शक्ति है। माया के स्वरूप निर्धारण के सम्बन्ध में आचार्य शंकर का कथन है कि न वह सत् है और न असत्। यदि माया सत् होती तो उसका ब्रह्मज्ञान के पश्चात् बाध न होता। इसके विपरीत माया को असत् भी नहीं कहा जा सकता। यदि माया असत् होती तो उसकी प्रतीति भी नहीं होती। व्यावहारिक जगत् की प्रतीति माया की सत्यता को भी प्रमाणित करती है। इस प्रकार माया परमार्थ सत् एवं अलीक असत् से विलक्षण होने के कारण प्रातीतिक रूप सत् है। यही माया का अनिर्वचनीय स्वरूप है। एक ही ब्रह्म माया के कारण अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है। विद्यारण्य स्वामी के शब्दों में 'स्पष्ट रूप से भासित होने पर भी जिसका निरुपण न किया जा सके वही माया है।'

आवरण ओर विक्षेप नामक माया की शक्तियाँ—

आचार्य शंकर ने माया की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ मानी हैं। माया की आवरण शक्ति के द्वारा आवृत जीव अपने आपको सांसारिक विषयों का कर्त्ता, भोक्ता आदि समझने लगता है और अविद्या के नष्ट होने के पश्चात् कर्तृत्व और भोक्तृत्व की वासना का भी विनाश हो जाता है।

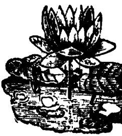
माया विक्षेप शक्ति के रूप में समस्त प्रपञ्च रूप जगत् की जननी है। जिस प्रकार अज्ञान के द्वारा रस्सी में सर्प की भावना हो जाती है, उसी प्रकार माया के द्वारा अज्ञान से आवृत आत्मा में अज्ञानी के लिये सूक्ष्म शरीर से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त आकाशादि प्रपञ्च की उद्भावना हो जाती है। परन्तु जब जीव माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है तो उसे सर्वत्र ब्रह्म की ही सत्ता प्रतीत होती है। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी ब्रह्मरूप हो जाता है।

शंकराचार्य के दर्शन की आचार सम्बन्धी विशेषताएँ—

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति पारमार्थिक है। आचार्य शंकर ने पारमार्थिक सत्ता के साथ जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्थापित करके वेदान्त दर्शन को पलायनवादी होने से बचा लिया है। व्यावहारिक जगत् की सुखमय स्थिति एवं चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उनके दर्शन का आचार सम्बन्धी दृष्टिकोण विश्व समाज को नितान्त उपयोगी देन के रूप में प्राप्त है। आचार सिद्धान्त वेदान्त का ही एक अंग है। आचार्य शंकर का आचार सिद्धान्त ज्ञान और कर्म तथा व्यवहार और परमार्थ का समन्वय है। उन्होंने राग-द्वेष युक्त सकाम कर्म का खण्डन करके निष्काम कर्म को महत्त्व दिया है। निष्काम कर्म चित्त शुद्धि के द्वारा जीव को मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। राग-द्वेष का त्याग करके शुभ भावना से धर्माचरण करने वाला व्यक्ति देव कहलाता है। इसके विपरीत स्वभाव सिद्ध राग-द्वेष से धर्माचरण करने वाला व्यक्ति असुर कहलाता है। यह देवकर्म एक ओर तो आध्यात्मिक प्राप्ति का साधन है तो दूसरी ओर सुखी आदर्श समाज का प्रस्थापक। जहाँ सकाम कर्म का अनुष्ठान मनुष्य को पशुत्व की ओर ले जाता है, वहाँ निष्काम कर्म मानव को सुर में परिणत कर देता है। इस प्रकार शंकराचार्य का निष्काम कर्म ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार का सुख प्रदान करता है।

कुछ अन्य देन—

इन सबके अतिरिक्त भी आचार्य शंकर ने भारतीय दर्शन को कुछ और दिया है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित समस्त अवैदिक मतों का खण्डन करके वैदिक धर्म को फिर से स्थापना की। इसके अतिरिक्त, दार्शनिक उत्थान एवं धर्माचरण के निमित्त भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना करके जो वातावरण उत्पन्न किया है, वह दार्शनिक जगत् के लिये परम हितकर सिद्ध हुआ है। तान्त्रिक उपासना के क्षेत्र में आचार्य ने जिस पद्धति का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है। भगवती त्रिपुर सुन्दरी के अनन्य उपासक शंकराचार्य ने श्रीविद्या के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह विलक्षण है। उन्होंने इस विषय का प्रतिपादन 'सौन्दर्य लहरी' एवं 'प्रपञ्च सार' नामक ग्रन्थों में बड़े सुन्दर ढंग से किया है। आचार्य शंकर अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष थे जिन्होंने अपने सूक्ष्म चिन्तन से भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद की स्थापना करके उसे परमोन्नत गौरव प्रदान किया।



गतांक से आगे—

सृष्टि और उसकी उत्पत्ति—

—डा०रामेश्वर दयाल गुप्त M A. P.H.D

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥

(ऋ० १०।१२६।५)

(एषां) इन (तीनों=ईश्वर जीव और प्रकृति) की (रश्मिः) किरण (तिरश्चीनः, विततः) तिरछी फैली हैं। (अधः, स्वित्, आसीत्) नीचे भी थीं और (उपरि, स्वित्, आसीत्) ऊपर भी थीं। (रेतोधाः) वीर्यधारक (जीव) (आसन्) थे और (महिमानः, आसन्) वे महान् थे। (अवस्तात् स्वधा) इधर प्रकृति थी (परस्तात् प्रयतिः) परे प्रयत्न (ईक्षण का बल) था।

भावार्थ :—प्रकृति जब कार्य रूप में परिवर्तित हुई तो उस परिवर्तन के हेतु तीनों ईश्वर, जीव और प्रकृति थे। मंत्र में 'एषां' शब्द इनके लिये बहुवचन के रूप मे है जिसका अभिप्राय यह है कि वह कम से कम तीन वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाताकुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥

(ऋ० १०।१२६।६)

(अद्धाः, कः वेद) यथार्थ कौन जानता है (कः, इह, प्रवोचत्) कौन यहाँ कह सकता है कि (यह सृष्टि) (कुतः, आजाता) कहाँ से आई (कुतः, इयं, विसृष्टिः) और कहाँ से विविध प्रकार की सृष्टि हुई। (अस्य, विसर्जनेन) इसकी उत्पत्ति के (अर्वाक्) बाद (देवाः) देव (उत्पन्न हुये है) अथ, कः, वेद) इसलिये कौन जानता है कि (यतः आबभूव) जिससे (यह जगत्) बना।

अर्थात् सृष्टि बनने का आँखों देखा ज्ञान मनुष्यों को नहीं हो सकता, क्योंकि सब सृष्टि उत्पन्न हो जाने के बाद उत्पन्न हुये हैं।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदिवादधे यदि वा न।
योअस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अंगवेद यदि वा न वेद ॥

(ऋ० १०।१२६।७)

(यतः, इयं, विसृष्टिः) जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि (आबभूव) उत्पन्न हुई (यदि, वा, दधे, यदि, वा, न) वह उसे धारण करता है या नहीं। (परमे, व्योमन्) असीम आकाश में (अस्य, यः अध्यक्षः)

इसका जो अधिष्ठाता है (सः, अंग, वेद, यदि, वा, न) वही जानता होगा तो जानता होगा। यहाँ स्पष्ट किया है कि यह स्थापना बुद्धि-जन्य है। प्रत्यक्ष पर आधारित नहीं है। अब प्रथम मंत्र देते हैं जिसमें प्रश्न का उत्तर है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

(ऋ० १०।१२६।१)

(तदानीं) उस समय (प्रलयावस्था में) (न, असत्, आसीत् न असत्=स्थूल जगत् था। (नः, सत्, आसीत् न सत्=सूक्ष्म जगत्=सूक्ष्म भूत था। (रजः न आसीत्) न अन्तरिक्ष था (तत्, परः, व्योमा) यह जो पर आकाश है, नहीं था। (उस समय) कुह–कहाँ (किम्) क्या (आवरीवः) ढका हुआ था? (कस्य शर्मन्) किसके आश्रय (सुख) के लिये? (गहनं गम्भीरम्) अगाध और गहन (अम्भः) अंभ=पञ्चभूतों का समीपवर्ती कारण (किम्) कहाँ था।

भावार्थ—कारण प्रकृति के सिवा, उसका कोई भी विकृत रूप महाप्रलयावस्था में नहीं था। पञ्चभूतों के प्रादुर्भूत होने से पहले जो उनका निकटवर्ती कारण रूप है उसे अंभ या जल कहते हैं।

इन मन्त्रों का ग्रिफिथने यो अंगरेजी अनुवाद किया है -

(१)

There whs neither non-reality nor reality then There was no air nor sky Which is belyond it- What covered in and where ? and whose was the shelter

Was water there, fathomless and deep ?

(२)

Death then existed not, nor life emmortal, Neither of night nor of day was there anysign Theone breathed ouless by se f impulse A part fromit was nothing what-so-ever.

(३)

Darkness was there, concealed in darkness, [Prakriti was there concealed in pralaya] And all this was hidden an indiscriminate chaos; The one that lay hidden dy void and formless. lm anifested Himself through His greatness nad might.

(४)

In the beginning there was Kama, The primal seed of the mind.

The sages searching in their hearts with wisdom, Foun kinsbip between existence and non-existence.

(५)

Their rays s'anted out and traversed Wonderfully below and above. There were seeds of life, mighty forces, Sustaining power below and forward Movement beyond.

(६)

Who verily knows, and who can here declare it – Whence was it born and whence came this creation ?

And did the shining ones appear with its production ?

But, then, who knows whence it has arisen ?

(७)

He, from whom this creation came into being, Whether He upheld it or He did not. He who oversees it in the eternal region, He verily knows it, or perpaps He does not know.

इन मन्त्रों में दो प्रकार के पदार्थ बताये है—

१—जो सृष्टि उत्पत्ति के समय नहीं थे—	२—जो पदार्थ सृष्टि उत्पत्ति के समय थे—
सत्–अभाव	अवात एकम्—one unimsoeble
असत्–कार्य जगत्	— ऊपर
अजः–भूगोल (Globes)	स्वधा—प्रकृति—का Energy (नीचे)
व्योम–Firmament	तमस्—अन्धकार
मृत्यु–	अप्रकेतं सलिलं—Fluid
अमृत–	आभूः—आकाश से घिरा पदार्थ।
अहः रात्र्या प्रकेतः] दिन रात	रेतोधाः जीवन बीज धारक महिमानः—मुक्त जीव प्रयति—Impulse संचारक शक्ति

यह सृष्टि तपसः महिमाऽजायत—तप से पैदा हुई ऊपर प्रभु था नीचे प्रकृति। बीज रूप से जीव (भोक्ता तथा मुक्त थे।)अब इन प्रतिज्ञाओं का आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान की भित्ति पर देखते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि हमारा सूर्य उष्णतम गैस का महान् पिण्ड है। सामान्य अन्तरिक्षीय स्थितियों में यह गैस द्रव अथवा ठोस से कम घनी है। यह 'सत्' है। किन्तु सूर्य के केन्द्रीय प्रवेश में दस बिलियन वातावरणों के अत्यधिक भार के कारण यह गैस पारे के घनत्त्व से छः गुनी घनी हो जाती है। सूर्य का औसत घनत्त्व से १ ४१ गुना अधिक है। ऐसा घनत्व रखने वाली गैस न ही 'सत्' है और न 'असत्'। अतः मन्त्र का कथन वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णतः शुद्ध है।

इस प्रकार सूर्य की गैसें न सत् है न असत्, किन्तु सूर्य और तारे ऐसी गैसों से बने हुए हैं। प्रारम्भ में सम्पूर्ण तत्त्व सम्पूर्ण आकाश में समान रूप से विभाजित था। इसका औसत घनत्व पानी के घनत्त्व से ०,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,११.२—२२ गुना था। इस तत्त्व को क्या कहा जाये, सत् या असत्? गैस या द्रव? कोई ऐसा नहीं कह सकता। वैज्ञानिकों ने इस पदार्थ का नाम यलेम' 'YLEM' रखा है। मन्त्र में इसे 'अम्भस्' कहा है जो सार्थक है जब कि 'यलेम' निरथक है। शब्द की अज्ञात तरगे ध्वनि कहाती है, इन्हीं को 'अम्भस्' कहते हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने शब्द और आकाश को सम्बन्धित माना है, जो आधुनिक विज्ञान को अब मान्य हुआ है।

मन्त्र में प्रश्न किया है कि 'किसने क्या वस्तु ढांकी' इसका भाव यह है कि प्रकृति अवस्था से सृष्टि अवस्था तक आने में बहुत कम समय लगा। आधुनिक वैज्ञानिक कहते है कि सृष्टि के प्रारम्भ के पश्चात् आणविक प्रतिक्रियाओं के परिणाम स्वरूप, समस्त मूलतत्त्व केवल आधा घन्टे में उत्पन्न हो गये। (गैमो कृत बर्थ ऐंड डेथ आफ सन) आधा घण्टा का समय विश्व के निर्माण में नितान्त तुच्छ काल है। इस प्रकार मन्त्र का यह भाग पूर्णतः शुद्ध है।

'कुह कस्य शर्मन्=कहाँ किसके आश्रय में, किसके हितार्थ ?—यह प्रश्न इस आधुनिकतम युग में अब भी अनुत्तरित है।

दूसरे मन्त्र वक्तव्य कि 'तब न मृत्यु थी, न अमृत'—पूर्णतया सत्य हैं क्योंकि उस समय सूर्य और पृथ्वी के न होने के कारण जीवन नहीं था।

'रात और दिन का चिह्न भी उस समय नहीं था—क्योंकि जब तक सूर्य और उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रह न हों, दिन-रात हो नहीं सकते।

'एक तत्त्व प्राणयुक्त था'—यह वक्तव्य आधुनिक मस्तिष्क को बड़ा धक्का लगाने वाला है। यह आधुनिक विज्ञान से पूर्णतः मेल खाता हैं—"वहाँ पर तारे श्वास ले रहे हैं अर्थात् उनके तल की पर्तें ऊपर उठती हैं और नीचे गिरती हैं।" यह तत्त्व श्वास ले रहा था—अपनी निजी शक्ति से प्राणयुक्त था'- इस सम्बन्ध में गैमो कहते हैं — (क्रमशः)

दूर कर के हर बुराई को भलाई दीजिये—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दु रितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० अ० ३० मं० ३ ॥

इस मन्त्र का ऋषिः —नारायण, देवता सविता और छन्दः—गायत्री है । यह मन्त्र महर्षि स्वामी दयानन्द को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होता है तभी तो यजुर्वेद का भाष्य करते हुये प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में सर्व प्रथम इसी को लिख कर अपना भाष्य आरम्भ करते है । आइये इस मन्त्र पर थोड़ा विचार करते हैं :

अन्वयार्थ :—(सवितः देव !) हे सब जगत् को उत्पन्न करने वाले तथा उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले दिव्य गुणो के भण्डार परमेश्वर ! (विश्वानि दुरितानि परासुव) तू हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण-दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर और (यत् भद्रम्) जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत् नः आसुव) वह हमें चहु ओर से प्राप्त करा ।

इस मन्त्र में उपासक प्रभु से प्रार्थना करता है, हे सविता देव ! तू हमारे सभी दुरितो को दूर कर और जो भद्र है, वह हमें प्राप्त कराईये ।

संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं । एक वे होते है जो संसार को इन बुराईयों को बुराईयाँ ही नहीं मानते । उनका कहना यह है कि ये सब कर्म तो मनुष्य के स्वाभाविक कर्म हैं । अतः इनके करने में कोई पाप नहीं है, बुराई नहीं है । दूसरे वे लोग हैं जो इन दुर्गुणों को तो दुर्गुण मानते हैं और यह भी अनुभव करते हैं कि इन दुर्गुण दुर्व्यसनों के कारण ही हमारा निरन्तर पतन हो रहा है । वे यह भी मानते हैं कि हमारे दुःखों का कारण भी यही दुर्गुण ही हैं, परन्तु ऐसे व्यक्ति हृदय से चाहते हुये भी इन दुर्गुण दुर्व्यसनों से अपने को पृथक् नहीं कर पाते हैं । वे यह भी जानते हैं, कि ये दुर्गुण दुर्व्यसन ऐसे नहीं है कि जिनसे पृथक् नहीं हुआ जा सके; क्योंकि उन्होंने संसार में ऐसे महापुरुष देखे हैं जो इन दुरितों से ऊपर उठे हुये हैं और इससे वे हमारी अपेक्षा अधिक सुखमय, शान्तिमय जीवन व्यतीत कर रह हैं । ये हैं देवजन-उत्तम जन, जिन्होंने अपने को इन दुर्गुणों से पृथक् करके अपने को सुखी शान्त और पवित्र बनाया है ।

इस प्रकार ये मध्यम कोटि के मनुष्य जो इन दुर्गुणों के कारण अपने को हीन अनुभव करते हैं वे इस अवस्था से ऊपर उठने के लिये देवों का-उत्तम मनुष्यों का आश्रय भी लेते हैं । उन से उन को निरन्तर धैर्य, सान्त्वना और उत्साह भी मिलता रहता है । इस वे निरन्तर ऊपर उठते रहते हैं । परन्तु उन के जीवन में एक दिन ऐसा भी आ जाता है कि जिन को देख कर वे समझते थे, कि ये दूध के धुले हुये ही नहीं अपितु गुणों के भण्डार भी हैं, उन में भी उनको शनैः शनैः दुर्गुण भासने लगते है । तब तो उन को उन से भी घृणा सी हो जाती है और फिर वे उन से भी आगे बढ़ कर उस देवाधिदेव परमेश्वर का आश्रय लेते हैं जिस को कृपा से वे देव दिव्य और पवित्र हुये थे या महान् बने थे । यह वह देव है जिसमें अपवित्रता

का लेश भी नहीं है, सब प्रकार से यह दिव्य है, द्युतिमान् है ज्योतिर्मय हैं। इस देवाधिदेव की कृपा से ही सब देव ज्योतिर्मय हैं, द्युतिमय हैं। यह देव पवित्रतम है। इसी की सम्पर्क पाकर सब पवित्र बनते हैं। अतः हमें भी इसकी शरण में जाना चाहिये और अपने आपको पवित्र बनाने का प्रयास करना चाहिये।

इस प्रकार वह परम देव-प्रकाशमय प्रभुदेव का सच्चा उपासक बन जाता है। उसे उस की शरण में जाकर पूर्ण विश्वास हो जाता है कि अब मेरे सब दुरित दूर हो जायेंगे। हृदय की सब कालिमा धुल जायगी। इस देवाधिदेव प्रभुदेव के सम्पर्क से मैं भी देव बन जाऊँगा।

उस परमदेव से वह प्रार्थना करता है—"हे देव! तू हमारे सब दुरितों को दूर कर और जो भद्र है, वह हमें प्राप्त करा।" उपासक को ज्ञात है कि ये दुरित ही हैं जो मुझे इस जगत् में दुर्गति-दुरवस्था को प्राप्त कराते रहते हैं। अतः वह दुर्गुणों से बचने के लिये पूर्ण प्रयत्न करता है। और फिर वह उस प्रभुदेव से प्रार्थना भी करता है। तभी तो उसके दुर्गुण धीरे-धीरे दूर होते जाते हैं। अब ज्यों-ज्यों उस के दुर्गुण दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों वह निर्मल-पवित्र होता चला जाता है।

अब प्रश्न यह है कि दुरित क्या है? और हम इसे कैसे-कैसे पहचानें? तो इस का उत्तर यह है कि जो यह दुरित शब्द है, इसी में ही यह व्याख्यात है कि दुरित क्या है। दुरित=दुः+इत, दुः=दुख, इत=प्राप्ति, अर्थात् जिस कार्य के करने के पश्चात् परिणाम में हमें दुःख की प्राप्ति होती हो वह दुरित है। इस प्रकार जिस भी कार्य के करने से परिणाम में हमें दुःख मिले, हमारी दुर्गति हो, वह दुरित हुआ। अब वह चाहे अध्ययन हो, खाना हो, पीना हो, सोना हो, जागना हो, चलना हो, फिरना हो, बात करना हो, चोरी करना हो या सीना जोरी करना हो, कुछ देना हो आदि आदि।

इस प्रकार अत्यधिक स्वाध्याय भी यदि परिणाम में हमें आँखों की ज्योति के और शारीरिक स्वास्थ्य आदि से वंचित करे तो वह भी दुरित है, भले ही वह वेद शास्त्रादि का स्वाध्याय ही क्यों न हो। और यदि स्वल्प स्वाध्याय भी हमारे जीवन का अंग बन कर हमें शरीर से स्वस्थ, मन से शान्त तथा आत्मा से तृप्त करने वाला है तो वह सुपरिणामी होने से भद्र है।

(क्षीर) खीर दुरित है यदि अत्यधिक सेवन करने पर हमें परिणाम में वह कष्ट दे, और वही हित, मित और ऋतरूप में सेवन करने पर सुपरिणाम वाली होकर भद्र भी हो सकती है।

उपासक यहाँ उन सभी प्रकार के दुर्गुण दुर्व्यसन और दुष्ट आचारों से बचना चाहता है जिन के परिणाम में उसे दुःख मिलता है। इस में वह देवाधिदेव परमेश्वर की साक्षी में चलता है, प्रयत्न करता है और साथ साथ प्रार्थना भी करता रहता है। उस पवित्रतम प्रभुदेव से उसे निरन्तर उत्साह मिलता रहता है। उस के नेतृत्व में अपना सूक्ष्म से सूक्ष्म दुर्गुण भी उसे ऐसा भासने लगता है कि वह दंग रह जाता है। हम अपने कमरे में बल्ब जलाते हैं और उसमें हर वस्तु जैसे स्पष्ट दिखाई देने लगती है, वैसे ही उसे अपने अन्दर की प्रत्येक बुराई भासने लगने लगती है। ज्यों ज्यों वह उन बुराईयों को दूर करता रहता है त्यों-त्यों वह निर्मल होता हुआ उस परमदेव परमेश्वर की कृपा का पात्र बनता चला जाता है।

वह उपासक प्रभुदेव से प्रार्थना करता है। "हे दिव्य देव! मेरे सब दुर्गुण दूर करो।" क्योंकि उपासक जानता है कि दुर्गुण, बुराई या छिद्र एक भी शेष रह गया, तो भले ही वह कितना भी छोटा ही क्यों न हो, वह छोटा सा छिद्र भी जैसे शनैः शनैः घड़े को रिक्त कर देता है वैसे ही उसका वह छोटा सा दुर्गुण भी उसे शनैः शनैः सद्गुणों से रिक्त कर मिट्टी में मिला सकता है। अतः वह प्रार्थना करता है-'मेरे सब दुर्गुण दूर कर।' इस प्रकार उपासक सब दुर्गुणों की निवृत्ति चाहता है। तभी तो वह उस परमदेव की शरण में जा बैठता है जो स्वयं सब प्रकार के दुर्गुणों से दूर रहता है और अपनी शरण में आये हुये को भी दुर्गुणों से दूर कर देता है। वह देव दुर्गुणों से दूर कर देता है। वह देव दुर्गुणों से दूर ही नहीं है अपितु सद्गुणों का भण्डार भी है और वह अपनी शरण में आने वाले को भी सद्गुणों से अलंकृत कर देता है।

भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है, "हे प्रभो! बहुत से दुरित ऐसे हूं गे जो मुझे तो दुरित नहीं दीखते हैं पर होते वास्तव में वे भी दुरित ही हैं। परन्तु तू उन्हें जानता है और मैं नहीं जानता। अतः ऐसे भी सब दुरितों को दूर कर जो मेरी दृष्टि में दुरित नहीं पर तेरी दृष्टि में दुरित ही हैं। तभी तो हे परमदेव! मैं तेरी शरण में आया हूं। क्योंकि तेरी शरण में रह कर ही सर्वविध दुर्गुणों से मैं मुक्त हो सकूंगा।"

"हे देव! (यत् भद्रं तत् नः आसुव) जो भद्र है वह हमें प्राप्त करा।" उपासक 'भद्रं' कहकर एक वचन में यह एक वस्तु मांगी। परन्तु इस एक भद्र मे भक्त ने कुछ छोड़ा नही। भद्रता भलाई एक भी यदि जीवन में आ जाय तो वह हमें भद्र-भले लोगों की श्रेणी में ला खड़ा कर देती है और बुराई एक भी यदि जीवन में आ जाए तो वह हमें अभद्रों की पंक्ति में खड़ा कर देती है। इसके अतिरिक्त जैसे एक बुराई अन्य भलाईयों के लिए रास्ता खोल देती है, तभी तो अन्य भलाईयां स्वयमेव आना आरम्भ कर देती हैं। जैसे जो मनुष्य चोरी करना आरम्भ कर देगा, उस के जीवन में झूठ-मिथ्या भाषण स्वयमेव आना आरम्भ हो जायेगा। चोरी करने वाला स्वभावतः अन्धकार प्रिय हो जायेगा। वह न्याय की बात करने वालों को शत्रु और रिश्वत लेकर अन्याय पूर्वक अपने को बचाने वालों को अपना मित्र समझता जायेगा इत्यादि।

इसी प्रकार यदि कोई अपने जीवन में एक भद्रता ले आता है, जैसे कि वह सोच ले, 'मैं किसी को अन्तःकरण से दुःख नहीं दूंगा, तो वह कभी असत्य भाषण नही करेगा, किसी से छल नही करेगा, गाली नहीं देगा क्योंकि वह जानता है कि इन कर्मों के परिणामस्वरूप दूसरों का दिल दुःखी होता है। इतना ही नहीं बल्कि वह इसके विपरीत प्यार से बोलेगा, शिष्टाचार से बोलेगा, सेवा करेगा, सहायता करेगा, क्योंकि ये कर्म अगले को दुःखी नहीं करते बल्कि और अधिक सुखी करते हैं।

इस के अतिरिक्त 'भद्रम्' शब्द यद्यपि है तो एक वचन में, पर इस एक वचन वाले 'भद्र' शब्द में भक्त ने सब कुछ मांग लिया। 'भद्र' शब्द 'भदि कल्याणे सुखे च' इस धातु से बनता है जिसका अर्थ होता है कि 'जिस के करने से इस संसार में सुख मिले और इस संसार से विदा हो जाने पर कल्याण होवे, वह भद्र कहलाता है।' भक्त प्रभु से तभी तो प्रार्थना करता है—'यत् भद्रं तत् नः आसुव' कि "जो भद्र हो वह

हमें प्राप्त करा। अर्थात् हमें उस गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ की प्राप्ति करा जिस के परिणाम स्वरूप हमें अभ्युदय और निःश्रेयस, इन दोनों की प्राप्ति हो।"

उपासक इस मन्त्र में उस प्रभुदेव से इतना नैकट्य अनुभव कर रहा है कि शिष्टाचार की मर्यादा को तोड़ कर प्यार में विभोर हो कर वह कह रहा है कि "हे प्रभुदेव ! तू सब दुरितों को दूर कर और जो भद्र है उसे प्राप्त करा।" उपासक यहाँ इतने विशाल हृदय वाला बन गया है कि प्रभु भक्ति में विभोर होकर भी स्वभाव वश अन्यों को नहीं भूलें, इसलिये तो उसने प्रार्थना की कि "प्रभुदेव ! तू सब के दुरितों को दूर कर और हम सब को भद्रता की प्राप्ति करा।"

इस मन्त्र में *'देव'* शब्द के साथ एक दूसरा सम्बोधन दिया हुआ है। वह यह कि जहाँ प्रभुदेव उपासक की दृष्टि में पवित्रतम है, दिव्यतम है वहाँ वह सविता भी है। 'सविता' शब्द 'षु प्रेरणे' (तुदादि गण) इस धातु से बनता है। वह प्रभु देव उत्तम गुण कर्म स्वभावों की सब को प्रेरणा देता है। उसी की प्रेरणा से प्रेरित हुए मनुष्य धीरे-धीरे देव बन जाते हैं, दिव्य बन जाते हैं, पवित्र बन जाते हैं। तब वे दिव्य देव प्रभु के प्यारे बन कर उस के परम प्यार-मोक्षानन्द के पात्र बन जाते हैं।

उस सविता देव की प्रेरणाओं को जिसने हृदय से अर्थात् श्रद्धा से सुनना आरम्भ कर दिया तो समझ लो कि वह तर गया। उसका लोक भी बन गया और परलोक भी बन गया।

वह हमें प्रेरणा क्यों देता है ? क्योंकि वह हमारा जनक है, उत्पन्न करने वाला पिता है वा उत्पन्न करने वाली माता है। 1'सविता' शब्द 'षुञ् अभिषवे' तथा 'षुङ् प्राणिगर्भविमोचने' इन धातुओं से बनता है। वह जगत् को उत्पन्न करता है। अतः सब की जननी और जनक है अर्थात् माता और पिता है। यदि कोई कहे कि हमें उत्पन्न करने वाले तो हमारे ये माता पिता हैं, तो यह नियम है कि जो जिसके उत्पन्न करने वाले होते हैं, वे उसके सम्बन्ध में यह जानकारी रखते हैं कि वह वस्तु कैसे बनी है। यदि हम अपने इन माता पिताओं से पूछते हैं कि —"जब आपने हमें उत्पन्न किया है, तो बताओ हमारी आँख की पुतली का निर्माण आपने कैसे किया है ?" यह सुनकर वे मौन हो जाते हैं अथवा बड़े धैर्य से वे उत्तर देते हैं कि— "हे प्रिय वत्स ! वास्तव में हम तुम्हारे जनक नहीं हैं, तुम्हारा वास्तव में सच्चा जनक और जननी तो वह सविता देव ही है। उसी ने तुमको उत्पन्न किया है। अतः वही जान सकता है कि यह आँख की पुतली कैसे बनी है।"

वास्तव में जो जिस वस्तु का उत्पन्न करने वाला होता है उस की रुचि भी उस के साथ सदा बनी रहती है। इस संसार में एक बालक यदि गन्दा होता है तो प्रायः सभी यह देखते हुए, जानते हुए भी यह कहते हुए आगे निकल जाते हैं कि 'यह बालक बहुत गन्दा है', पर उसे कोई साफ नहीं करता। अब अगर उस की जननी और जनक को यह भान हो जाय तो वे वहाँ से तब तक टल नहीं सकते जब तक कि वे उसे

---

१ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥   अथर्व २०.१०,८२ ॥ ऋग्वेद ८.१०.१० ॥

साफ न कर देंगे या नहला-धुला न लेंगे आदि-आदि । ठीक इसी प्रकार वह देव सविता भी हमें उत्पन्न करने वाली माता है, पिता है। अतः वह हमें प्रेरणा देता है ताकि हम अच्छे साफ-सुथरे पवित्र बनें और जग में अच्छे लगें। परन्तु एक दिन ऐसा भी आ जाता है कि ये माता-पिता भी समझाते-समझाते हार जाते हैं, थक जाते हैं, निराश हो जाते हैं, यह सोच कर, कि ये मानते तो हैं नहीं, अतः इन्हें समझाना व्यर्थ है, इनके साथ माथा-पच्ची करना बेकार है। परन्तु जो इनसे भी महान् है, वास्तव में वह ही हमारा सच्चा जनक और जननी -, जिसे वेद की भाषा में 'सविता' कहते हैं। वह न ही हारता है, न ही थकता है और न ही कभी निराश होता है। जब ये माता पिता हार कर वानप्रस्थ आश्रम आदि में चले जाते हैं तब भी वह हर बुरे कार्य के करने पर अन्दर से भय, शंका, लज्जा उत्पन्न करके सावधान करता रहता है और हर अच्छे कार्य पर अन्दर से आनन्द, उत्साह और निर्भयता प्रदान कर के आगे बढ़ने और ऊपर उठने की प्रेरणा देता रहता है। उस परम माता, परम पिता रूप सविता देव का इतना स्नेह और इतनी सहानुभूति है हम से कि जब तक पूर्ण पवित्र कर के हमें वह मोक्ष तक न पहुँचा दे तब तक वह हमारे अन्तःकरण को धोने में संलग्न रहता है। इन जागतिक माता और पिता का धैर्य टूट जाता है पर उनका धैर्य नहीं टूटता। अतः उस (सविता वै देवानां प्रसविता[1]) देवों को भी उत्पन्न करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले 'सविता' देव का जितना भी धन्यवाद किया जाये उतना ही कम है। इस संसार में भी जो हमें नाना प्रकार के कष्ट एवं आपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं, वे भी वास्तव में हमारे कल्याण के लिये ही होती हैं, पर हम इन्हें समझ नहीं पा रहे होते हैं। एक बच्चा गन्दा होता है, नहाता नहीं है, कपड़े नहीं बदलता, तब माँ जबरदस्ती उसको पकड कर उस के कपड़े उतारती है, उस के सिर, हाथ, मुख और बदन आदि पर साबुन लगाती है और उसको रगड़-रगड़ कर धोती है तो तब वह बालक रोता है, चिल्लाता है, भागता है, पर नहा धो लेने पर जब माँ उसे साफ-सुथरे कपड़े पहनाती है, सुरमा डालती है, तेल लगाती है और फिर गोदी में लिटा कर दूध पिलाती है, तब उस बच्चे को दुरित गन्दगी की निवृत्ति के उपरान्त अमृत रस का पान करने को मिलने पर वह चैन की नींद सो जाता है। उस समय उस को जो विश्राम और चैन मिलता है उसे वह ही जानता है। इसी प्रकार ये संसार की आपत्तियाँ एवं कष्ट रूप इस परम पिता परमेश्वर की रगड़ाई में जब हमारी सारी मन्दगी धुल जायेगी और हम साफ-सुथरे निर्मल और पवित्र हो जाएंगे तो, फिर केवल हम संसार में ही सुशोभित नहीं होंगे बल्कि प्रभु भजन में बैठकर उस सविता देव के अमृत रस का पान कर मोक्ष के—आनन्द के सच्चे पात्र बनकर परम शान्ति, परम आनन्द के भागी भी बन सकेंगे। अतः हमें इस संसार की असफलियों में भी यही समझना चाहिये कि वह परम जनक या परम जननी हमें रगड़-रगड़ कर धो रही है इसलिये कि हम साफ-सुथरे हो जायें, निर्मल और पवित्र हो जाएं तथा अपने लक्ष्य रूप भद्र=सुख और कल्याण को प्राप्त करें।

—◆◆—

---

1 शतपथ १. १. २. १७.।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
में
वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला
गुरुकुल प्रणाली ही एकमात्र समाधान—

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में ४ सितम्बर से ७ सितम्बर ८२ तक राष्ट्रीय वैदिक कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें अनेकों विश्वविद्यालय के शिक्षाविदों ने भाग लिया। इस कार्यशाला में वैदिक शिक्षा एवं गुरुकुल प्रणाली के संदर्भ में आज की शिक्षा जगत् की विभिन्न समस्याओं के बारे में विचार किया गया।

इस कार्यशाला का समारम्भ करते हुए सुप्रसिद्ध शिक्षा मनिषी डा० सत्यव्रत सिद्धान्तलङ्कार ने कहा कि आज से सौ वर्ष पहले मैकाले ने भी भारतीय पीढ़ी को अंग्रेजियत से सरोबार करने हेतु योजना बनाई थी। और मैकाले की पाश्चात्य शिक्षा के जवाब में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ८० पूर्व गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के द्वारा एक अन्य पाठविधि का आयोजन किया। आज हम इस कार्यशाला में प्राचीन वैदिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में आज की शिक्षा समस्याओं पर चिंतन करने एकत्रित हुए हैं।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा डा० माधुरी शाह का उद्घाटन भाषण भी पढ़ा गया। यद्यपि वे रूग्णावस्था के कारण इस समारोह में नहीं आ सकी। उन्होंने अपने सन्देश में लिखा भारत के नवजागरण के आन्दोलन में ऋषि दयानन्द का स्थान अद्वितीय है। उससे प्रेरणा लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आज से ४० वर्ष पूर्व तक एक नई आशा और नई स्फूर्ति से गंगा नदी के तट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। आज जब चहुँ ओर से हमें शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं ने घेर रखा है, वैदिक शिक्षा के आधार भूत मूल्यों पर अपनी शैक्षणिक समस्याओं का समाधान खोजना होगा। इस दिशा में यह कार्यशाला कुछ ठोस प्रस्ताव रख सके तो मैं समझती हूँ सम्पूर्ण शैक्षणिक समस्याओं का निदान हो सकेगा।

इस अवसर पर उदबोधन देते हुए मान्यवर कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने कहा आज हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति भटकाव के चौराहे पर है। कितने आश्चर्य की बात है कि उच्च संस्कारों का ऊँची शिक्षा एवं उपाधियों से कोई तालमेल नहीं रह गया।

इस अवसर पर बोलते हुए गुरुकुल के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने कहा आज पुनः हम अपना लेखा जोखा सामने रखे तथा वैदिक शिक्षा प्रणाली के मूल आधारों को अपनी शिक्षा प्रणाली में समाहित करे।

इस कार्यशाला में विभिन्न विश्वविद्यालय से आये शिक्षा वेत्ताओं के द्वारा ३२ निबन्ध प्रस्तुत किये गये। देहली, रुड़की, चण्डीगढ़, जबलपुर, रूहेलखण्ड, गुरुकुल आदि विश्वविद्यालयों से एकत्रित शिक्षा वेत्ताओं की यह आम राय थी कि शिक्षा का आदर्श छात्र का सर्वतोमुखी विकास किया जाना है। यह तभी सम्भव है जब गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आधार पर आचार्य शिष्य का प्रगाढ़ सम्बन्ध वैसा ही हो जैसा मां का अपने गर्भस्थ शिशु से होता है।

वैदिक शिक्षा से श्रेष्ठ मानव का निर्माण— दिनांक ५-६-८२

गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) ५-६-८२ राष्ट्रीय वैदिक शिक्षा कार्यशाला के दूसरे दिन अनेकों वक्ताओं ने वैदिक शिक्षा प्रणाली की विशेषताओं को दिखलाते हुए यह सिद्ध किया कि जीवन के सर्वाङ्गीण पक्ष का विमोचन आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित वैदिक शिक्षा प्रणाली में ही निहित है। इस सत्र में श्री जगदीश विद्यालङ्कार तथा डा० निगम शर्मा ने वैदिक शिक्षा दर्शन पर अपने निबन्ध प्रस्तुत किये। इस अवसर पर विद्वज्जनों को सम्बोधित करते हुए डा० भवानीलाल भारतीय, अध्यक्ष दयानन्द शोधपीठ, पंजाब विश्वविद्यालय ने वैदिक शिक्षा पर आर्य समाज के प्रयोग का ऐतिहासिक दिग्दर्शन प्रस्तुत किया।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बड़े भावपूर्ण तरीके से आचार्य शिष्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि गुरुकुल में आचार्य शिष्य का सम्बन्ध इतना निकटता पूर्ण होता है जैसे माँ अपने पुत्र को गर्भ में रखती है। आचार्य शिष्य का यह सम्बन्ध ब्रह्मचर्य सूक्त में मिलता है।

स्थानीय शिक्षा वेत्ताओं ने भी सक्रिय रूप से इस कार्यशाला सत्र में भाग लिया। इस कार्यशाला के सायंकालीन सत्र के विषय आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा का महत्त्व पर प्रमुख वक्ता के रूप में बोलते हुए जबलपुर विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि डा० एम० एल० पुरोहित ने गुरुकुल शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं का दिग्दर्शन कराते हुए कहा की आज कि शिक्षा प्रणाली को बदलने हेतु भारत को एक नये श्रद्धानन्द की आवश्यकता है। आज शिक्षावेत्ता शिक्षा की मूल समस्याओं के निराकरण हेतु गुरुकुल शिक्षा की ओर देख रहे हैं। इस सत्र में डा० ;आर० एल० वार्ष्णेय एवं डा० क्रान्तिकृष्ण ने भी भाग लिया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा० सुरेशचन्द्र शास्त्री ने कहा कि आज की प्रणाली का एकमात्र विकल्प गुरुकुल शिक्षा से ही है।

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के तीसरे दिन का टैगोर, अरविन्द और गांधी के शिक्षा दर्शन और प्रयोग से सम्बधित था। इस विषय पर डा० हरगोपाल सिंह, डा० भारत भूषण आदि ने अपने निबन्ध प्रस्तुत किये। प्रमुख वक्ता डा० जे० पी० आत्रेय अध्यक्ष दर्शन विभाग रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय का कहना था टैगोर की शिक्षा में बालक की जिज्ञासा के प्रति आस्था है, वहाँ अरविन्द के शिक्षा दर्शन में आत्म विज्ञान की शिक्षा को ही प्राथमिकता दी गई है, महात्मा गांधी की शिक्षा में सर्वतोमुखी विकास पर बल दिया गया है लेकिन ऋषि दयानन्द ने तो अपने शिक्षा दर्शन में जीवन के सभी मूल्यों एवं साधनों का आधार ब्रह्मचर्य को स्थापित किया तथा उनके अनुसार आचार्य शिष्य के अंतरंग सम्बन्धों से ही विद्यार्जन

कार्य होता है। अध्यक्षीय भाषण करते हुए महात्मा आर्य भिक्षु जी ने कहा कि आज की पाठशाला में बच्चे को पढ़ाने नहीं भेजा जाता बल्कि बनाने भेजा जाता है। शिक्षा का उद्देश्य आज मात्र जीविका उपार्जन रह गया उसमें भी यह शिक्षा सफल नहीं है।

सायंकाल सत्र का विषय स्वामी श्रद्धानन्द का महान् शैक्षणिक प्रयोग था जिसमें डा० विनोद चन्द्र सिंहा ने गुरुकुल शिक्षा के इतिहास पर प्रकाश डाला। ओमप्रकाश मिश्र ने गुरुकुल शिक्षा की परिकल्पनाएं प्रस्तुत की। इस अवसर पर उपस्थित प्रमुख वक्ता डा० प्रशान्त कुमार वेदालंकार दिल्ली विश्वविद्यालय ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों का विवेचन करते हुए गुरुकुल कांगड़ी की उपलब्धियों के सम्बन्ध में सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। डा० गंगाराम ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि मैकाले की शिक्षा का एकमात्र जवाब स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी था।

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के अन्तिम दिन के सत्र में विभिन्न शिक्षा चिन्तकों ने गुरुकुल शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त किया। इसी सत्र में एक अन्य विषय योग की प्राचीन पद्धतियों पर भी विचार किया गया। जिसमें डा० विजयपाल शास्त्री, डा० त्रिलोक चन्द तथा डा० विनोद चन्द ने भाग लिया।

आज के इस सत्र के प्रमुख वक्ता प्रो० रत्नसिंह अध्यक्ष दर्शन विभाग, मेरठ विश्वविद्यालय ने ऋषि दयानन्द के विचारों के आधार पर यह सिद्ध किया कि गुरुकुल शिक्षा के आधार पर ही श्रेष्ठ मानव का निर्माण सम्भव हो सकता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त के आधार पर कुछ वक्ताओं ने आचार्य शिष्य सम्बन्धों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री सम्पादक "शक्ति सन्देश" ने कहा कि चाहे जिस तरीके से शिक्षा की समस्याओं पर विचार करें समाधान हमें शिक्षा के वैदिक आदर्शों में ही परिलक्षित होता है।

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के सायंकालीन सत्र का विषय 'वेदों में विज्ञान' में अनेक शिक्षा प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें थे डा० वेदप्रकाश शास्त्री, डा० रामेश्वर दयाल गुप्त इत्यादि निबन्ध वाचन किया। प्रमुख वक्ता डा० श्रीमती पूनम सागर, मानविकी विभाग रुड़की विश्वविद्यालय ने अथर्ववेद में कृषि विज्ञान पर अपना शोध निबन्ध प्रस्तुत किया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रसिद्ध वैदिक विद्वान नारायण मुनि जी ने वेद के मन्त्रों के आधार पर यह सिद्ध किया कि वेद का विज्ञान सार्वभौमिक है। वेदों में विज्ञान के स्थान पर यह कहना ज्यादा सार्थक है कि वेद का विज्ञान मौलिक है जिसे मनुष्य अपनी बुद्धि से परिष्कृत करके आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अन्वेषण कर सकता है।

उपर्युक्त वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के ८ दिनों में लगभग ३२ निबन्धों का वाचन किया गया। इस कार्यशाला में सभी प्रतिनिधियों ने देश के शिक्षा जगत् के समक्ष उठती हुई ज्वलंत समस्याओं पर विचार मंथन किया। प्रतिनिधियों की अनेकों जिज्ञासाओं का प्रायः सभी सत्रों में प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रमुख विद्वानों द्वारा समाधान किया गया।

इस कार्यशाला ने वर्तमान शिक्षा के कलेवर को विशुद्ध करने हेतु सस्तुतियाँ दी। दिनाक ७-६-८२ को सप्तकाल वैदिक शिक्षा कार्यशाला का समापन समारोह सम्पन्न हुआ जिसमे कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने विश्वविद्यालय के समस्त शिक्षक एवं कर्मचारियों को इस सफलता पूर्वक आयोजन के लिये धन्यवाद किया।

वैदिक शिक्षा कार्यशाला के निदेशक डा० जयदेव वेदालङ्कार ने कहा कि वैदिक शिक्षा कार्यशाला के समस्त शोध पत्रों एवं परिणामो को शीघ्रातिशीघ्र छपवा कर शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्रेषित किया जायेगा। यह एक स्मारिका के रूप में होगा, जिसमें शिक्षा जगत् की समस्त समस्याओं का निराकरण वैदिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जायेगा।

